श-परिचय-माला

भारतीय नगरों की कहानी

लेखक
भगवतशरण उपाध्याय

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट : दिल्ली

प्रथम आवृत्ति

अक्टूबर -५६

मूल्य

बारह आना

मुद्रक

हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस

क्वीन्स रोड, दिल्ली

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

सूची

भारतीय नगरों की कहानी

१. काशी

पतितपावनी गंगा के तट पर बसी काशी बड़ी पुरानी नगरी है। इतने प्राचीन नगर संसार में बहुत नहीं हैं। आज से हज़ारों बरस पहले नाटे क़द के साँवले लोगों ने उस नगर की नींव डाली। तभी वहाँ कपड़े और चाँदी का व्यापार शुरू हुआ।

वे नाटे क़द के साँवले लोग शान्ति और प्रेम के पुजारी थे। किसी से लड़ते-झगड़ते नहीं थे, अपने खेत जोतते थे, माल बेचते-खरीदते थे। छोटी-छोटी नावों में माल भर-भर गंगा की राह दूर तक वे चले जाते, बैलगाड़ियों में माल लाद देस-देस की यात्रा करते थे।

एक दिन दूर पच्छिम से आकर ऊँचे क़द के गोरे लोगों ने उनकी नगरी छीन ली। ये ऊँचे लोग घोड़ों पर चढ़कर आये थे। इनके पास तीर-कमान थे, भाले-बरछे थे, फरसे और ढाल थे, बचाव के लिये टोप और कवच थे। बड़े लड़ाके थे वे। लड़ाई ही उनका पेशा था। दूर देशों से वे लड़ते ही आये थे। उनके घर-द्वार न था, धन-दौलत न

थी। घोड़े की पीठ उनका घर-द्वार था, लड़ने के हथिय ही उनकी धन-दौलत था। वे भला हारते कैसे ? उनके पास भला हारने को था ही क्या ? और काशी उन्होंने अनायास जीत ली। परकोटों को तोड़कर वे नगर के भीतर घुस गये। नगर के मालिक बन गये। वे अपने को 'आर्य' कहते थे, श्रेष्ठ, महान्।

आर्यों की अपनी जातियाँ थीं, अपने कुल-घराने थे। एक-एक जाति का एक-एक राजा होता था। उनका एक राजघराना तब काशी में भी आ जमा। आर्य तब इस देश को चारों ओर जीतते जा रहे थे। उन्होंने पच्छिम में अनेक राज्य कायम किये। काशी के पास ही अयोध्या में भी तभी उनका राजकुल बसा। उसे राजा इक्ष्वाकु का कुल कहते थें, सूर्यवंश, जिसके पुरखे सूर्य की सन्तान माने जाते थे। काशी में चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा हुई। सैकड़ों बरस उस नगर पर भरत राजकुल के चन्द्रवंशी राजा राज करते रहे।

काशी में आर्यों के आने के बाद नई चहल-पहल शुरू हुई। बाबा विश्वनाश (शिव) की पूजा तो होती ही रही, साथ ही यज्ञ-हवन भी होने लगे, भाँति-भाँति के जानवर भी बलि दिये जाने लगे। नये प्रकार की पूजा शुरू करने वाले उस नगर के नये राजा थे बृहद्रथ कुल के।

काशी तब आर्यों के पूरबी नगरों में से थी, पूरब में

उनके राज की सीमा। उसके पूरब का देश अपवित्र माना जाता था। आर्य लोग मन्तर और झाड़-फूँक से अपने रोग-व्याधि उसी पूरब के देश की ओर भगाते थे।

आर्य लोगों के राजा कन्या के विवाह के लिये स्वयंवर किया करते थे। अनेक राजा बन-ठन कर आते और राज-कन्या जिसे चाहती उसे चुन लेती और उसीसे उसका ब्याह हो जाता। यही स्वयंवर था क्योंकि इसमें लड़की अपना वर अपने आप चुनती थी। कभी-कभी स्वयंवर में वीरता पर-खने का भी इन्तज़ाम होता था, जैसे रथ-दौड़, घुड़दौड़ होती और जो अपना रथ या घोड़ा सबसे आगे निकाल ले जाता वही लड़की को ब्याहता। जैसे बड़े धनुष की डोरी चढ़ानी होती, ऊपर नाचती मछली को नीचे तेल में देखकर बाण से बेधना होता। इसी प्रकार के एक स्वयंवर में पांडवों-कौरवों के पितामह भीष्म ने काशी नगरी की तीन लड़कियाँ जीती थीं।

महाभारत की लड़ाई के पहले मगध में राजा जरासन्ध ने बड़ा राज कायम किया। बड़े राज को साम्राज्य कहते थे। भारत का वह पहला साम्राज्य था। काशी भी उसी साम्राज्य में समा गई। महाभारत के नरसंहार में फिर जरासन्ध और उसका पुत्र सहदेव दोनों जूझ गये। कुछ काल बाद जब गंगा की बाढ़ ने पाण्डवों की राजधानी

हस्तिनापुर को डुबा दिया तब पाण्डव इलाहाबाद ज़िले में जमुना के तीर कौशाम्बी में नई राजधानी बनाकर बस गये। उनका राज वत्स कहलाया और काशी पर मगध की जगह अब वत्स का अधिकार हुआ।

फिर ब्रह्मदत्त नाम के राजकुल का काशी पर कब्जा हुआ। उस कुल के राजा बड़े पंडित हुए। असल में उस काल ज्ञान और पंडिताई ब्राह्मणों से क्षत्रियों के हाथ में आ गई थी। ब्राह्मण पंडित ज्यादातर पुरोहिताई करते थे पर ज्ञान का विचार क्षत्रिय राजा लोग करने लगे थे। ऐसा विचारवान पंडित पंजाब में कैकय राजकुल में उसी काल राजा अश्वपति था। तभी गंगा-जमुना के द्वाब में राज करने वाले पांचालों में राजा प्रवहण जैवलि ने भी अपने ज्ञान का जादू चलाया। तभी जनकपुर-मिथिला में विदेहों का राजा जनक हुआ जिसके दरबार में याज्ञवल्क्य के-से ज्ञानी महर्षि और गार्गी जैसी पंडिता नारियाँ शास्त्रार्थ करती थीं, तभी काशी नगरी का राजा अजातशत्रु हुआ जो आत्मा और परमात्मा के ज्ञान में अनुपम था। ब्रह्म और जीवन के सम्बन्ध पर, जन्म और मौत पर, लोक-परलोक पर तब देश में विचार हो रहे थे। इन विचारों को उपनिषद् कहते हैं, इसी से यह काल भी उपनिषत्काल कहलाता है। तब काशी का भी उपनिषत्काल था।

जमाना अब बदल गया था। जैसे ब्राह्मण की जगह क्षत्रिय महान् माने गये वैसे ही कर्मकांड, पुरोहिताई और पशुबल की जगह अमर आत्मा और जन्म-मरण पर विचार होने लगे। अहिंसा का बोलबाला हुआ। बड़े-बड़े राज-कुमार अपना भोगविलास, राजपाट छोड़ सत्य की खोज में संन्यासी हो गये। वैशाली-मिथिला के लिच्छवियों में इसी प्रकार के साधु वर्धमान महावीर हुए, कपिलवस्तु के शाक्यों में गौतम बुद्ध। उन्हीं दिनों काशी का राजा अश्वसेन हुआ। पार्श्व उसीका बेटा था, बड़ा विचारवान् और ज्ञानी। उसने राज-पाट छोड़ जनता के कल्याण के लिये चोरी, झूठ, हिंसा और धन के ख़िलाफ़ प्रचार किया। उसीके विचारों का प्रचार कर महावीर ने जैन धर्म की बुनियाद डाली।

उन दिनों भारत में चार राज्य प्रबल हो रहे थे जो एक-दूसरे को जीतने के लिये, आपस में बराबर लड़ते रहते थे। ये थे मगध (दक्खिन बिहार), कोसल (अवध), वत्स और उज्जयिनी। कभी काशी वत्सों के हाथ में जाती, कभी मगध के और कभी कोसल के। महावीर-बुद्ध से कुछ काल पहले, पार्श्व से कुछ ही बाद कोसल-श्रावस्ती के राजा कंस ने काशी को जीत कर अपने राज में मिला लिया। उसी कुल के राजा महाकोशल ने तब अपनी बेटी कोशलदेवी का मगध के राजा बिंबसार से ब्याह कर 'चूड़ास्नान' (दहेज-

जेबखर्च) के रूप में काशी की सालाना आमदनी एक लाख हर साल अपनी बेटी-दामाद को देना शुरू किया और इस तरह काशी मगध के हिस्से में जा पड़ी। कहाँ तो काशी पवित्र और मगध अपवित्र कहलाते थे, अब पवित्र काशी पर अपवित्र मगध का चंगुल पड़ा।

पर काशी के भाग का निपटारा यहीं नहीं हुआ। राजाओं की छीना-झपटी में आज वह एक के हाथ में थी, कल दूसरे के। राज के लोभ से मगध के राजा बिंबसार के बेटे अजातशत्रु ने पिता को भूखों मारकर गद्दी ले ली। तब विधवा बहन कोशलदेवी के दुःख से दुखी उसके भाई कोशल के राजा प्रसेनजित ने काशी की आमदनी अजातशत्रु को देनी बन्द कर दी। फिर तो मगध और कोशल में समर छिड़ गया। कभी काशी कोशल में, कभी मगध के हाथ लगी। अन्त में अजातशत्रु जीता और काशी उसके बढ़ते हुए साम्राज्य में समा गई। कुछ काल बाद मगध की राजधानी राजगृह से उठकर गंगा और सोन के तीर पाटलिपुत्र (पटना) बसी, पर काशी का भाग न फिरा।

गौतम तप के बाद गया में ज्ञान प्राप्त कर काशी के पास हिरनों के जंगल सारनाथ में आये। वहाँ तप के समय उनके पाँच साधु-साथी थे जो बुद्ध के तप छोड़ देने से नाराज होकर सारनाथ चले आये थे, उन्हीं को सबसे पहले

अपने ज्ञान का उपदेश करने के विचार से बुद्ध पहले सारनाथ आये और वहीं काशी के पास उन्होंने अपने पहले उपदेश किये। पहली बार वहाँ उन्होंने अपने धर्म के चक्के को घुमाया। उसी चक्के का रूप हमारे झंडे पर बना है। उसी सारनाथ में अशोक ने अपने स्तूप और खंभे खड़े किये। खंभे के सिंह भी हमारे झंडे के गौरव हैं। तब से देश-विदेश से बौद्ध धर्म के पंडित बराबर सारनाथ-काशी आते रहे हैं।

मगध के राजकुल बदले। शैशुनागों के बाद नन्द आये, नन्दों के बाद मौर्य, मौर्यों के बाद शुंग और शुंगों के बाद कण्व। यानी क्षत्रियों के बाद उनका नाश करने वाले शूद्र फिर क्षत्रिय, तब ब्राह्मण, पर काशी की काया मगध से बँधी रही।

नन्दों के शूद्र-शासन से काशी की गति बिगड़ चली पर ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने उसे सहारा दिया। पर मौर्यों के अधिकार में आकर तो उसे वह देखना पड़ा जो उसने कभी न देखा था। अशोक ने अपने अहिंसा के उत्साह में पशु-बध बन्द कर दिया। था तो वह ठीक ही पर उससे ब्राह्मणों की पुरोहिताई बन्द हो गई, यज्ञ-हवन बन्द हो गये और ब्राह्मणों और पुराने विचारों की हिन्दू जनता में बड़ा असन्तोष फैला।

ब्राह्मणों के नेता और अशोक के कुल के राजा बृहद्रथ के सेनापति और पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने अपने राजा को

मारकर मगध की गद्दी पर अधिकार कर लिया। तभी ब्राह्मणों के पक्ष में मनुस्मृति नाम का धर्मशास्त्र बना और संस्कृत भाषा और पुरानी पुरोहिताई का फिर एक बार बोलबाला हुआ। यज्ञ-कर्मों का फिर काशी केन्द्र हुई। बौद्धों की बग़ावत और देश के दुश्मनों से उनके मिल जाने से पुष्यमित्र ने जो उनके मठ और बिहार जला डाले तो काशी की महिमा बढ़ी।

कुछ काल पहले काशी की ही राह चलकर विदेशी ग्रीक-यवनों की सेना पाटलिपुत्र गई थी, कुछ काल बाद विदेशी शक अम्लाट ने पाटलिपुत्र लूटने के पहले काशी को भी लूटा। फिर कुशानों के राजा कनिष्क का उस महान् नगरी पर अधिकार हुआ।

उस विदेशी चंगुल से काशी को छुड़ाया पद्मावती के भार शिव नागों ने। काशी का जितना महत्व उस काल बढ़ा उतना कभी न बढ़ा। नाग क्षत्रिय शिव के पुजारी थे और अपनी पीठ पर वे शिवलिंग धारण करते थे। इसी से वे कहलाते भी 'भारशिव नाग' थे। उनके राजाओं ने बार-बार विदेशी कुशानों से लोहा लिया, बार-बार अश्वमेध कर उन्हें हराया और जब-जब उन्होंने अश्वमेध किया काशी की गंगा में ही उन्होंने स्नान भी किया। इस प्रकार उन्होंने काशी के गंगा तट पर दस अश्वमेध किये जिससे वहाँ के

सबसे प्रसिद्ध घाट का नाम ही दशाश्वमेध पड़ गया जो आज तक चलता है।

नागों के बाद गुप्तों का साम्राज्य खड़ा हुआ। हूणों ने उसे तोड़ दिया। पर गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त ने उनसे मोर्चा लिया। काशी के पास ही उस राजा के खड़े किये पत्थर के खंभे पर खुदा है—हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता। भीमावर्तकरस्य। स्कन्दगुप्त की भुजाओं के हूणों से सहसा टकरा जाने से धरती काँप उठी, भयानक आवर्त (पानी में घूमने वाला गढ़ा) बन गया। इससे उस देश-भक्त के देश-प्रेम का पता चलता है। काशी के अनेक नागरिक उस युद्ध में लड़े होंगे।

गुप्तों के बाद भारत की राजलक्ष्मी पाटलिपुत्र से उठकर कन्नौज चली गई। हर्षवर्धन का तब काशी पर अधिकार हुआ। पर कुछ ही काल बाद कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने काशी की दिग्विजय की। शंकर और मंडन मिश्र का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ यहीं हुआ था। कहते हैं कि मंडन मिश्र के आसपास ज्ञान का इतना विस्तार था कि पिंजरे में रहने वाली उनकी शुकसारिकायें भी संस्कृत बोलतीं और वेद मंत्र पढ़ती थीं।

धीरे-धीरे कन्नौज के राजा गुर्जर-प्रतीहार हुए। तब काशी बंगाल के पालों के हाथ से निकल कर उनके अधिकार

में चली गई। और उनके बाद ही जब त्रिपुरी का कलचुरी राजा गांगेयदेव काशी का स्वामी था तभी महमूद गज़नवी के पंजाब के शासक नियाल्तगीन ने उस पर हमला कर उसे लूटा। काशी पर इस्लाम का वह पहला हमला था। जब तक त्रिपुरी का गांगेयदेव उस नगरी की रक्षा के लिये तैयार हुआ तब तक नियाल्तगीन नगर को लूट कुछ ही घन्टों में चलता बना।

जब कन्नौज के गाहड़वाल उत्तर भारत के राजा हुए तब अपने पूर्वी इलाकों की रक्षा के लिये उन्होंने काशी को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। उस कुल का आखिरी राजा जयचन्द था। शिहाबुद्दीन ग़ोरी ने उसे परास्त कर काशी को बुरी तरह लूटा। उसके मंदिर में बड़ा धन भरा था, गोरी सब उठा ले गया। ऊँचे भवनों के कलस-कँगूरे उसने तोड़ दिये। उसी के सेनापति बख्तयार ने जब बंगाल जीता तब उसकी कुछ चोटें काशी को भी राह में झेलनी पड़ी थीं।

तब से दिल्ली में मुसलमानी सल्तनत कायम हुई। काशी उसी सल्तनत के कब्ज़े में आई और जब दूर के इलाकों पर उसकी पकड़ कमज़ोर हुई तब जौनपुर के बादशाहों ने उस पर अधिकार कर लिया। बाबर ने दिल्ली पर अधिकार कर काशी ले ली पर उसके बेटे हुमायूँ को देश से बाहर भगा शेरशाह अफ़गान ने काशी को भोगा। शेर-

शाह और अकबर दोनों के शासन में काशी में अमन-चैन रहा और उस नगरी ने सुख की साँस ली। कुछ ही काल पहले काशी का जुलाहा कबीर रामानन्द का चेला हुआ था। रामानन्द के चेले हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। इस्लाम की अनीति से मुसलमान हुए, हज़ारों मुसलमानों को उन्होंने शुद्ध किया था। कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनों की देन था। दोनों धर्मों की बुराइयाँ उसने बड़ी हिम्मत से दिल खोलकर रख दीं, दोनों की अच्छाइयों का प्रचार किया। उसका जीवन इतना पवित्र, इतना उदार था कि मरने पर यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह हिन्दू था या मुसलमान, कि उसका दाहकर्म किया जाय या उसे दफ़नाया जाय।

अकबर के साम्राज्य के सबसे महान् साधु तुलसीदास थे। उन्होंने अपनी रामायण (रामचरित मानस) काशी के ही अस्सी घाट पर लिखी। देश के कोने-कोने में उसका प्रचार हुआ, जन-जन का मन उसके स्पर्श से पवित्र हुआ।

शाहजहाँ ने अकबर का पोता होकर भी काशी में मन्दिरों का बनना रोक दिया पर वहाँ के महान् पंडित जगन्नाथ का बड़ा सम्मान किया। इसी जगन्नाथ ने मुसलमान हो जाने पर अपनी शुद्धि के लिये पतित पावनी गंगा की स्तुति में गंगालहरी लिखी जो संस्कृत साहित्य का

मधुर काव्य है।

शाहजहाँ के विजयी बेटे औरंगज़ेब ने काशी पर कुदृष्टि की। उसके मन्दिर तोड़ दिये, नगर को बुरी तरह लूटा। बाबा विश्वनाथ का मन्दिर मस्जिद बन गया। उसकी कैद से भागकर शिवाजी ने साधु के रूप में काशी में दो दिन शरण ली। कुछ काल उस पर मरहठों का भी अधिकार रहा और उसके मन्दिरों के भाग फिर एक बार जगे।

मुग़लों के सम्राट् शाह आलम ने जब बंगाल की दीवानी अँग्रेज़ों को सौंप दी तब काशी कम्पनी के हाथ लगी। काशी के राजा चेतसिंह ने कंपनी के गवर्नर जेनरल हेस्टिंग्स् को उसकी मनमानी से चिढ़कर नगर से मार भगा दिया। पर हेस्टिंग्स् लौटा और अँग्रेज़ों का अधिकार नगर पर फिर हो गया।

सन् सत्तावन की आज़ादी की लड़ाई में काशी के नागरिकों ने भी अपने हाथ के करतब दिखाये और एक दिन इसी काशी में गोखले ने कांग्रेस की विशाल सभा का संचालन किया। आज़ादी की लड़ाई में काशी ने बार-बार बलिदान किये।

इस प्रकार काशी की नगरी ने बदलते ज़माने देखे, हमलों की धमक सुनी, तलवारों की चमक देखी। पर शस्त्र की झंकार के साथ ही शान्ति और ज्ञान की उसकी गूँज जो उठी तो उसने दिशाओं को भर दिया। हज़ारों साल पुरानी काशी आज भी 'तीनों लोकों में न्यारी' है।

२. प्रयाग

प्रयाग (इलाहाबाद) भी आज से हज़ारों साल पहले गंगा और जमुना के संगम पर बस गया था। उस संगम को त्रिवेणी कहते हैं। नदियाँ तो दो ही हैं, गंगा और जमुना, पर सदा से एक तीसरी नदी सरस्वती का भी छिपे-छिपे उन दोनों से आ मिलने की बात कही गई है, जिससे उस संगम का नाम त्रिवेणी पड़ा। पहले आर्य लोग पानीपत के पास कुरुक्षेत्र में बसे थे और सरस्वती के तीर अपने यज्ञ-हवन करते थे। वह सरस्वती वहीं रेत में सूख गई थी। आर्य लोग अपनी उसी पुरानी बस्ती से उठकर पूरब में इसी गंगा-जमुना के संगम पर जो पीछे आ बसे और वहाँ बड़े उत्साह से अपने याग-होम करने लगे तो उनकी नयी बस्ती का नाम ही प्र-याग यानी वह स्थान पड़ गया जहाँ यज्ञ वगैरह अधिकाधिक होते थे। सरस्वती के तीर की पूजा जैसे लौट आई और आर्यों को लगा कि वे सरस्वती के तीर ही बसे हैं, इससे वे रेत में खोई उस धारा का नाम भी लेने लगे और इस संगम का नाम तीन नदियों का संगम त्रिवेणी पड़ गया।

त्रिवेणी-संगम का वर्णन संस्कृत में खूब हुआ है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण और कालिदास ने अपने रघुवंश में गंगा की उजली और जमुना की नीली धाराओं का सुन्दर वर्णन किया है। प्राचीन काल में अनेक ऋषियों ने वहाँ अपना आश्रम बनाया और त्रिवेणी में स्नान की बड़ी महिमा हुई। उसीसे प्रयाग तीर्थराज, तीर्थों का राजा, माना गया। राम जब पिता की आज्ञा मान बनवास के लिये चले तब पहले प्रयाग में ही रुके और भरद्वाज मुनि के उन्होंने उपदेश सुने।

गंगा-जमुना का द्वाब प्राचीन काल में अन्तर्वेद कहलाता था। पीछे यह भूमि राजनीति में बड़ी विख्यात हुई। बड़े-बड़े राज इस भूमि पर खड़े हुए। प्रयाग उसी अन्तर्वेद की पूर्वी सीमा पर बसा उसका पूरब का द्वार था। हस्तिनापुर के बाढ़ से नष्ट हो जाने पर पांडव-कुल के राजा इसी अंतर्वेद में चले आये और उन्होंने प्रयाग से थोड़ी ही दूर पच्छिम हटकर इलाहाबाद के ज़िले में ही कौशाम्बी में अपनी नई राजधानी बसाई। कौशाम्बी का राजा उदयन बड़ा रसिया था। संस्कृत साहित्य में उसके प्रेम की कथा बार-बार कही गई है। कौशाम्बी जाते समय अनेक बार बुद्ध ने प्रयाग में ही डेरा डाला था।

अशोक ने अपने शान्ति के सन्देश पत्थर के खंभे पर

खुदवा कर उसे कौशाम्बी में खड़ा किया। वही खंभा आज इलाहाबाद (प्रयाग) के किले में खड़ा है। अशोक के पीछे उसके वंशज बृहद्रथ को मारकर जब पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने मगध में अपना राज कायम किया तब प्रयाग उस नये राज का इलाक़ा बना। बौद्ध पुष्यमित्र के खिलाफ़ विदेशी यवन राजा मिनान्दर को चढ़ा लाये पर प्रयाग के पास ही दोनों में जो घमासान युद्ध हुआ उसमें मिनान्दर को मारकर पुष्यमित्र ने अपने साम्राज्य की सीम पंजाब में सिन्धु नदी तक बढ़ा ली।

प्रयाग की ही राह जाकर शक अम्लाट ने पाटलिपुत्र (पटना) को लूटा था और कुशानों की सेना भी उसी राह वहाँ पहुँची थी। भारशिव नागों ने तब कुशानों से प्रयाग को मुक्त किया था। इसी अन्तर्वेद (गंग-जमुना का द्वाब) से गुप्त-सम्राटों की शक्ति उठी थी। तब उसका केन्द्र प्रयाग ही था। समुद्रगुप्त जब दिग्विजय के लिये निकला तब नाग-राजाओं की सम्मिलित सेना ने प्रयाग के पास ही उसके घोड़ों की बाग रोकी पर उस ग़ज़ब के लड़ाके ने नागों की शक्ति तोड़ दी और अपनी दिग्विजय का ब्यौरा अशोक के उसी खम्भे पर खुदवाया जिस पर अशोक ने अपने शान्ति के सन्देश खुदवाये थे।

गुप्तों के बाद प्रयाग के स्वामी पहले मौखरी हुए, फिर

उनका सम्बन्धी थानेश्वर का राजा हर्षवर्धन हुआ। तब उत्तर भारत की राजधानी कन्नौज थी। हर्ष ने तीर्थराज प्रयाग की महिमा अपने दान से और बढ़ाई। बड़े प्राचीन काल से उसके संगम पर स्नान होता आया था पर अब हर पाँचवें साल हर्ष अपने खजाने की संचित संपत्ति वहाँ गरीबों को दान करने लगा। सभी प्रकार के साधु-अभ्यागत-मँगते आकर उसका दान लेते। एक बार तो हर्ष ने अपना सब कुछ दान कर दिया, यहाँ तक कि उसे अपनी बहन राज्यश्री से माँगकर कपड़े पहनने पड़े थे। चीनी यात्री हुए-नत्सांग ने उस दान का आँखों देखा वर्णन किया है। हर पाँचवें साल होने वाले इस मेले का नाम महामोक्ष-परिषद् था। उसी ने धीरे-धीरे कुम्भ का रूप धारण किया।

इस काल से गहड़वाल राजा जयचन्द्र के समय तक प्रयाग अधिकतर कन्नौज के ही अधिकार में रहा। कश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड़ ने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को हरा कर इसी त्रिवेणी में स्नान किया। यशोवर्मन के प्रसिद्ध राज-कवि भवभूति ने भी अनेक बार प्रयाग के इस पावन संगम पर स्नान कर पुण्य-संचय किया था।

पहले मगध उत्तर भारत का विधाता रहा था और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) शक्ति का केन्द्र रही थी। पर अब राजलक्ष्मी वहाँ से उठकर कन्नौज पर छा

गई थी जिससे सभी प्रबल राजा उसे अब अपने अधिकार में करने के लिये आपस में जूझने लगे थे। बंगाल के पाल राजा, राजपूताने के गुर्जर-प्रतीहार राजा और दखिन के राष्ट्रकूट (राठौर) राजा उसके लिये आपस में टकराने लगे और कन्नौज जब जिसके हाथ जाता, प्रयाग भी उसी का हो रहता।

बंगाल के धर्मपाल ने एक बार कन्नौज पर अधिकार कर लिया पर राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ने प्रयाग के पास ही उसे हराकर भागते पालराज से उसके छत्र-चँवर छीन लिये। फिर उसने इलाके को लूट प्रयाग के मन्दिरों में लूटे धन का एक अंश चढ़ा दिया। राष्ट्रकूटों ने जो दखिन से प्रतीहारों को खदेड़ा तो उन्होंने कमज़ोर कन्नौज पर अधिकार कर लिया।

प्रतीहारों के बाद गहड़वाल आये। उन्हीं के समय जयचन्द्र पर शहाबुद्दीन गोरी ने हमला किया। जमुना तीर चन्दवारा के मैदान में दोनों में घमासान युद्ध हुआ और वीरवर बूढ़ा जयचन्द्र अपनी मुट्ठी भर सेना के साथ लड़ता वीरगति को प्राप्त हुआ। काशी लूटने जाते गोरी ने प्रयाग को भी वैसे ही लूटा जैसे कभी नियाल्तिगिन ने उसे लूटा था। उसके बाद प्रयाग भी कन्नौज के साथ ही दिल्ली की सल्तनत का इलाका बना और बराबर बना रहा। प्रयाग

वाले इलाके का केन्द्र इलाहाबाद जिले में ही कड़ा था। अब कड़ा का इतिहास प्रयाग का इतिहास बन चला।

कड़ा के सूबेदारों ने अनेक बार विद्रोह किये। कतलग़ ख़ाँ, अरसल ख़ाँ, मच्छूमलिक, मिर्ज़ा, अलाउद्दीन सभी ग़द्दार थे। अलाउद्दीन ने तो जो भयानक काँड किया उसका सानी इतिहास में नहीं। कड़ा प्रयाग से चलकर वह देवगिरि पहुँचा और उसे लूट अनन्त धनराशि लिये जब वह लौटा तब उसके चचा जलालुद्दीन ख़िल्जी ने दिल्ली से आकर प्रयाग में उसका स्वागत किया। पर जब प्रसन्न चचा प्यार से गद्‌गद्‌ भतीजे को गले लगा रहा था तभी भतीजे ने उसकी छाती में कटार घुसेड़ दी।

प्रयाग का नगर जमुना के किनारे नई विधि से विशेषकर अकबर ने बसाया। उसका नाम इलाहाबाद पहले से ही पड़ चुका था। उसका किला त्रिवेणी के संगम पर अकबर ने ही बनवाया। उसकी कहानी भी बड़े मजे की है। सामने गंगा पार झूँसी है। पहले वह चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी प्रतिष्ठान था। बाद वह भर्गों के अधिकार में रहा। फिर वत्सों के और प्रयाग के साथ ही उसने भी भाग्य के उतार-चढ़ाव देखे थे। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य दोनों ने वहाँ कभी शास्त्रार्थ किया था। कुमारिल ने तो वहीं अग्नि-समाधि ली थी।

कहते हैं कि अकबर जब पटने से लौटकर त्रिवेणी के तीर खड़ा हुआ तब झूँसी के हिंदू राजा को उसने बुलवा भेजा। राजा के हाथ-पैर मारे घबड़ाहट के फूल गये। तब उसने अपने मन्त्री बीरबल से पूछा, अब क्या किया जाय? बीरबल ने ईंट-चूने से भरी कुछ नावें राजा के साथ अकबर के पास भेज दीं। अकबर चकित हो गया। उसने उसका भेद पूछा तो राजा ने बीरबल का नाम बताया। अकबर ने बीर-बल को बुलाकर जो पूछा तो उसने कह दिया कि जहाँपनाह की तरह का बुद्धिमान बादशाह त्रिवेणी पर खड़े होकर उस कुदरती बचाव की जगह सम्भव न था कि किला बनवाने की बात न सोचे, इसीसे शुभ के लिए थोड़ा ईंट-चूना भेज दिया। अकबर उसे आगरे ले गया और अपने 'नौरत्नों' में उसे भी गिना। कुछ ही दिनों बाद इलाहाबाद का किला बन-कर खड़ा हो गया।

अकबर के बेटे सलीम (जहाँगीर) ने इलाहाबाद में ही बाद से बग़ावत शुरू की और उसी किले में अपने नाम के सिक्के ढलवाये। फिर उसके बेटे खुसरू ने भी अपने बाप जहाँ-गीर के खिलाफ़ विद्रोह का झण्डा वहीं खड़ा किया। वहीं पकड़े जाने पर बाप के हुक्म से उसके छोटे भाई खुर्रम (शाहजहां) ने उसकी आँखें निकाल लीं और वहीं बग़ावत का झण्डा लेकर वह ख़ुद अब जहाँगीर के ख़िलाफ़ खड़ा हुआ।

अब तक प्रयाग पूरा-पूरा जमुना के तीर लम्बा बसा इलाहाबाद बन चुका था। औरंगजेब ने दिल्ली का तख़्त पाने के बाद इलाहाबाद के मन्दिरों को भरपूर लूटा और उन्हें जमीन में मिला दिया। उसी के बड़े भाई और हिंदुओं के दोस्त दाराशिकोह ने इलाहाबाद को सँवारा था, दारागंज बसाया था। वहीं त्रिवेणी के तटपर उपनिषदों के फ़ारसी अनुवाद कराये थे। अब इलाहाबाद औरंजेब की कट्टर नीति का शिकार था।

धीरे-धीरे इलाहाबाद कम्पनी के हाथ आ गया। बुज़-दिल शाह आलम ने दिल्ली से आकर इसी इलाहाबाद में ख़ुसरोबाग में क्लाइव को बंगाल-बिहार की दीवानी सौंप दी। दिल्ली सल्तनत के टख़ने टूट गये।

पर कम्पनी ने कुछ कम ज़ुल्म न किये और उत्तर भारत ने जब सन् सत्तावन के ग़दर में आज़ादी का झण्डा उठाया तब इलाहाबाद ने भी बड़े बलिदान किये। उसके चौक में जो कुछ एक पेड़ खड़े हैं उनकी डालों से सैकड़ों देश-भक्त लटका दिये गये। लाट कैनिंग ने, मिन्टो पार्क में विक्टोरिया का एलान पढ़ा और भारत की हुकूमत इङ्गलैंड की पार्लमेंट के अधिकार में आ गई।

ज़माना फिर बदला और आज़ादी की लड़ाई फिर नए सिरे से छिड़ गई। इलाहाबाद उसका प्रबल केन्द्र बना।

इलाहाबाद ने भारत को अनेक नेता दिये। आज़ाद भारत के विधाता जवाहरलाल नेहरू इसी नगर के हैं जो आज संसार की युद्ध-विरोधी राजनीति सँवार रहे हैं।

३. उज्जयिनी

उज्जयिनी या उज्जैन की नगरी भारत की सात पवित्र नगरियों में गिनी जाती है। कभी वह अवन्ती की राजधानी थी। आज भी वह मालवा की प्रधान नगरी है। अपने बड़प्पन के कारण कभी वह विशाला भी कही जाती थी।

प्रद्योत और नंद, मौर्य और शुंग, मालव और शक वाकाटक परमार राजकुलों ने समय-समय पर उज्जैन में राज्य किया। उसका जाना हुआ इतिहास बुद्ध के समय आज से कोई ढाई हजार साल पहले शुरू होता है। उसका प्रताप पहले-पहल तभी प्रद्योत राजाओं की हकूमत में बढ़ा। चंड प्रद्योत महासेन तभी हुआ जब मगध में अजातशत्रु, कोसल में प्रसेनजित और कौशाम्बी में उदयन राज्य करते थे। अपनी कठोरता के कारण वह चंड कहलाता था एवं बड़ी सेना के कारण महासेन।

प्रद्योत ने अपना राज्य धीरे-धीरे खूब बढ़ा लिया और एक बार तो मगध का राजा तक उससे डर गया था। पर असली कशमकश उसकी कौशाम्बी के वत्सों से चली। कौशाम्बी का राजा उदयन जितना विलासी था उतना ही वीर भी

था। जब उसका राज किसी तरह सर न हो सका तब प्रद्योत ने उसे जीतने का एक उपाय सोचा। उदयन वीणा बजाने और हाथियों के शिकार में बड़ा कुशल था। वीणा बजाकर वह हाथी पकड़ा करता था। एक दिन अवन्ती और वत्स की सरहद पर बनावटी हाथी छोड़कर उसने उदयन को लुभा लिया। उस हाथी के पेट में हथियारबन्द सिपाही थे। उदयन के वीणा बजाकर उसे पकड़ते ही उन सिपाहियों ने निकलकर उसे क़ैद कर लिया। महीनों उदयन उज्जैन में क़ैद रहा। प्रद्योत के वासवदत्ता नाम की एक बड़ी सुन्दर लड़की थी जिसे वीणा सीखने का बड़ा शौक था। प्रद्योत ने उदयन को ही उसे वीणा सिखाने को नियत कर दिया। उदयन और वासवदत्ता में धीरे-धीरे प्रेम हो गया और एक दिन हाथी पर वासवदत्ता को लेकर उदयन कौशाम्बी भाग गया। इस प्रकार वत्स फिर आजाद हो गया।

जब मगध में नन्दों का राज हुआ तब उन्होंने अनेक देश जीत लिये। उज्जैन भी उन्हीं की बढ़ती हुई हदों में समा गया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने नन्दों का संहार कर मगध में मौर्यों का राजकुल स्थापित किया। तब समुन्दर से समुन्दर तक पूरब से पच्छिम भारत पर चन्द्रगुप्त का ही शासन जमा। पच्छिमी भारत की रक्षा के लिये तब उज्जैन को उसने उधर की राजधानी बना दिया। उसका पोता प्रसिद्ध

अशोक राजा होने के पहले उज्जैन का शासक रहा था। उज्जैन तब समुद्र से आने वाले माल और उत्तर से समुद्र को जाने वाले माल की सबसे बड़ी मण्डो बन गया। सारे एशिया और पूरबी यूरोप में उज्जैन की ख्यति फैली।

मौर्य-शासन के अन्त होनें के कुछ काल बाद अवन्ती के इलाके का नाम बदल कर मालवा हो गया। पंजाब में तब अनेक वीर जातियाँ अपना पंचायती राज बनाकर रहती थीं। उन्हीं में एक जाति मालवों की थी। मालव वीर किसान थे जो सदा एक हाथ में हँसिया दूसरे में तलवार धारण करते थे। रावी नदी के तट पर उन्होंने संसार विजयी सिकन्दर को लोहे के चने चबवा दिये थे। मौर्यों ने उनकी आजादी पर हमला किया और मालव अपनी आज़ादी की रक्षा के लिये पूरबी राजपूताना होते हुए उज्जैन के चारों ओर अवन्ती में जा बसे। तभी से उस इलाके का नाम मालवा पड़ा।

उन्हीं दिनों विदेशी शकों के झुंड-के-झुंड सिन्ध से उज्जैन की ओर बढ़ रहे थे। मालवों और शकों में मुठभेड़ हो गई। मालव जीते और उनके मुखिया विक्रमादित्य ने उसी जीत की यादगार में प्रसिद्ध विक्रम-संवत् चलाया जो आज भी इस देश में चलता है और जिसका दूसरा नाम मालव-संवत् भी है।

शक जाति तब हार तो गई पर धीरे-धीरे उसकी शक्ति फिर बढ़ी और इस देश में उनके पाँच राजकुल क़ायम हुए। उन्हीं में एक मालवा और उज्जैन का स्वामी हुआ। शक थे तो विदेशी पर उन्होंने इस देश में बसकर इस देश के रीति-रिवाज भाषा आदि अपना लिये। उनके शासन में उज्जैन की शक्ति और प्रतिष्ठा खूब बढ़ी। ज्योतिष का सबसे बड़ा केन्द्र भारत में उज्जैन ही रहा है। उसे ज्योतिष का केन्द्र इन्हीं शकों ने बनाया। देश-विदेश सर्वत्र से उन्होंने ज्योतिष के पंडित बुलाये और उस ज्ञान को बढ़ाया। संस्कृत भाषा की भी उन्होंने बड़ी सेवा की और जहाँ तब के ब्राह्मण-राजा तक अपने लेख बोलियों में लिखाते थे, शक राजाओं ने संस्कृत को राजभाषा बनाया और अपने लेख उसीमें लिखवाये। शकराज रुद्रदामा का गिरनार का लेख संस्कृत गद्य का पहला और सुन्दर नमूना है।

कुछ काल बाद जब गुप्त सम्राट् भारत में प्रबल हुए तब उन्होंने पच्छिमी समुद्र तक देश जीत लिया। मालवा भी उन्हीं के साम्राज्य में शामिल हुआ और उज्जैन को मौर्यों की ही तरह उन्होंने भी अपनी दूसरी राजधानी बनाया। समुद्री व्यापार में अब और भी उन्नति हुई और माल के आने-जाने में उज्जैन संसार का सबसे बड़ा बाजार बना। तब भारत का व्यापार पूरब में समुद्री द्वीपों

से लेकर पच्छिम में रोम और मिस्र तक चलता था। उज्जैन उस सारे व्यापार-वैभव का स्वामी बना।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों का मालवा में अन्त किया था। उसकी सभा के नवरत्नों में से एक महाकवि कालिदास बहुत काल तक उज्जैन में रहा था। उसकी रचना में बार-बार उज्जैन का बखान हुआ है। वह नगर उसे बड़ा प्रिय था। काशी के विश्वनाथ की ही भांति उज्जैन के महाकाल शिव की बड़ी महिमा थी। वह मन्दिर सिप्रा के तट पर आज भी खड़ा है। कालिदास ने उसका बड़ा सुन्दर वर्णन अपने काव्य मेघदूत में किया है।

चीन से आनेवाली भयानक हूण जाति ने गुप्तों का इतना प्रबल और विशाल साम्राज्य तोड़ डाला। कुछ काल के लिये हूणों का अधिकार भी मालवा पर जम गया पर तुरंत यशोवर्मा ने उन्हें वहां से निकालकर उज्जैन में अपना राज क़ायम किया। अभी मालवा हूणों की चोट से सम्हला भी न था कि गुर्जर-प्रतीहारों के राजा ने जोधपुर की दिशा से आकर उस पर हमला किया और उज्जैन के चारों ओर का इलाका रौंद डाला। फिर उनको वहां से निकालकर दखिन राष्ट्रकूट कुछ काल के लिये उज्जैन के स्वामी हुए।

उज्जैन की ख्याति परमार राजाओं के समय फिर एक बार बढ़ी। उनका राजा मुन्ज अपने भतीजे भोज की ही

भाँति अपने साहस, वीरता और विद्या के लिये प्रसिद्ध हो गया है। उसके शासन के समय उज्जैन ने उन्नति की चोटी छू ली। मुञ्ज का दूसरा नाम (विरुद) 'पृथ्वीवल्लभ' था। निश्चय वह उज्जैन का वल्लभ ही था। अनेक बार उसने दखिन के चालुक्य राजाओं को हराया पर अन्त में जब गोदावरी लांघ उनके राज में दूर भीतर घुस गया तब चालुक्यों ने उसे पकड़ लिया और हाथी से कुचलवा डाला। उज्जैन का वल्लभ अब नहीं रहा। वह अनाथ हो गई। मुञ्ज के भतीजे राजा भोज ने वहाँ से अपनी राजधानी हटाकर धारा नगरी में क़ायम की। साठ बरस तक भोज ने मालवा पर राज किया और इस बीच उसने दूसरों को लूटा, दूसरों नें उसे लूटा। मालवा लहूलुहान होता रहा, उज्जैन की लक्ष्मी डावांडोल होती रही। और एक दिन दुश्मन राजाओं ने मिलकर भोज पर हमला किया। वृद्धावस्था में भी भोज उनसे लड़ता रहा पर अन्त में एक ही साथ दो-दो मार्चों पर लड़ता हुआ भोज जब पच्छिमी मोर्चे से पूरबी मोर्चे को सम्हालने बढ़ा तब उसकी मृत्यु हो गई। उज्जैन को शत्रुओं ने बुरी तरह लूटा। भोज ने अपनी राजधानी धारा नगरी को बनाया था पर उससे उज्जैन का वैभव तनिक भी नहीं घटा। भोज की वीरता और विद्या के यश का लाभ उज्जैन को भी हुआ।

तभी भारत पर मुसलमानों के हमले होने लगे थे। ग़ज़नी का महमूद बारबार इस देश पर धावे करने लगा था। उज्जैन कुछ काल अभी उनसे बचा रहा, यद्यपि देसी राज-घराने उसे लूटते-खसोटते रहे। अलाउद्दीन खिलजी के समय उसके सेनापति मलिक क़ाफ़ूर ने मालवा को रौंद डाला और उज्जैन से सदा के लिये हिन्दू-सत्ता उठ गई। शीघ्र धारा-नगरी के पास ही मांडू में अफ़गान सुल्तानों ने डेरा डाला और उज्जैन के भी, मालवा के साथ ही, वे स्वामी हुए।

तब मालवा और गुजरात के सुल्तानों में एक-दूसरे को जीतने के लिये खूब कशमकश होती थी। जब-तब दोनों मेवाड़ के राणा के खिलाफ मिल जाया करते थे। एक बार राणा कुम्भ ने दोनों की मिली सेनाओं को बुरी तरह हरा-कर उस जीत की यादगार में चित्तौड़ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ खड़ा किया। मालवा और उज्जैन कुछ काल इस तरह मेवाड़ के अधिकार में रहे। फिर हुमायूँ और शेरशाह ने उन्हें जीता। शेरशाह के बाद मालवा का अफगान राजकुल फिर प्रबल हुआ और बाजबहादुर और रूपमती के गीत मांडू, धारा और उज्जैन सर्वत्र समस्त मालवा में गूँज चले। पर अकबर ने बाजबहादुर को दम न लेने दिया। और मालवा को जीतकर अपने राज में मिला लिया। उज्जैन की स्वतन्त्रता सदा के लिये लुप्त हो गई।

उज्जैन ने वैभव और पतन दोनों की राह देखी है। ऊँचे साम्राज्य भी उसमें क़ायम हुए, लुटेरों की चोट भी उसने सही। उसका महत्व निश्चय पहले का-सा आज नहीं है, पर उसकी रज में सदियों का गौरव छिपा है, उसके कण-कण में इतिहास पुकारता है।

४. वैशाली

उत्तर बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर जिले में एक गांव है बसाढ़। वही प्राचीन वैशाली है, महावीर और बुद्ध के सम्बन्ध से पवित्र। दोनों ने वहाँ समय-समय पर निवास किया था, महावीर तो वहां जनमे ही थे। पर वैशाली का गौरव केवल इसी से नहीं है, इससे भी बढ़कर इस बात में है कि वह उन पंचायती राजों का केन्द्र था जिन्होंने सदियों साम्राज्यों की लोभ-लिप्सा से संघर्ष किया था। और जब उन्होंने उसे लील लिया तब भी उसके लिच्छवियों और वज्जियों के पंचायती राजों (गणतन्त्रों) की ख्याति इतिहास में अमर बनी रही। जब तक जनता की आजादी का संसार में बोलबाला रहेगा, वैशाली के उन प्राचीन पहरुओं का नाम भी इस धरा पर बना रहेगा।

वैशाली पहले मिथिला के राजाओं के अधिकार में थी। बार-बार जनता ने राजाओं को हटाकर वहां जनता का अधिकार क़ायम किया। विदेहों के राजा जनक भी वहां बार-बार अपनी शक्ति जमाते रहे। वहां के राजा जनक कहलाते थे। मिथिला के राजा सीरध्वज जनक ने राम से अपनी बेटी

सीता का ब्याह कर अपने कुल का गौरव बढ़ाया था। जनता ने शीघ्र उस कुल का नाश कर वैशाली के पास ही मिथिला में अपना राज कायम किया। पर कुछ ही सदियों बाद जनक विदेह ने फिर राजकुल कायम कर वहाँ अपने यश का विस्तार किया। इतिहास ने करवट ली और जनता ने उसका तख्त उलटकर फिर अपना पंचायती राज स्थापित किया। पर मिथिला में नहीं, वैशाली में।

मिथिला में सीता ने जन्म लेकर नारी जाति के सिर गौरव का तिलक लगाया था। जनक ने अपनी सभा को ज्ञान का अखाड़ा बनाया था जहाँ याज्ञवल्क्य के-से उपनिषदों के ज्ञानी संसार और जनम-मरन के भेद खोलते थे, जहाँ गार्गी की-सी नारियाँ जटिल-से-जटिल प्रश्न कर महर्षियों को चकित कर दिया करती थीं। पर वैशाली का नया गौरव भी कुछ कम न हुआ। पंजाब और अवध में पंचायती राजों की कमी न थी पर उनकी शक्ति असल में वैशाली में ही फली-फूली।

कारण कि उन्होंने कोसल और मगध दोनों की हड़प-नीति का मुकाबला किया और जान पर खेलकर अपनी आज़ादी की बार-बार रक्षा की। वैशाली की शक्ति इतनी बढ़ी कि उसके रिसाले गंगा पार कर मगध के इलाकों पर धावा करने लगे। यह उसके भूमिलोलुप राजा अजातशत्रु

की नीति का बदला था। और उसे घबड़ाकर गंगा और सोन के कोने में वैशाली के लड़ाकों से उस इलाके की रक्षा के लिये कोट बनवाना पड़ा। वही कोट बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) की नींव साबित हुआ।

अब अजातशत्रु ने वैशाली के पंचायती राज को जीत लेने की ही ठानी। पर उसको जीत लेना आसान न था। जब उसने बुद्ध से वैशाली जीतने का उपाय पुछवाया तब बुद्ध ने उसकी अजेयता के सात कारण बताये। कहा—जब तक वज्जियों के संघ में एकता है, जब तक उस संघ की बैठकें जल्दी-जल्दी होती हैं, जब तक उनके भेद गुप्त रखे जाते हैं, जब तक प्राचीन परम्परा का उसमें आदर है, जब तक वृद्धों में उसका आदर है, जब तक वह नारी का सम्मान करता है, जब तक उसकी मंत्रणा का भेद सुरक्षित है, जब तक उसमें संयम है, तब तक वैशाली का संघ जीता नहीं जा सकता।

पर अजातशत्रु वैशाली को जीतने पर ही तुल गया था। उधर वैशाली ने भी अपनी रक्षा के लिये अपने गणतंत्रों का संघ बना लिया था। एक-एक पंचायती राज गणतंत्र कहलाता था, उनका एका संघ। इस प्रकार के वहाँ वज्जी, लिच्छवि आदि आठ गण-तंत्र थे जो एक साथ मिलकर संघ बन गये और उनका नाम वज्जिसंघ पड़ा। वैशाली जो पहले

अकेले लिच्छवियों की राजधानी थी, अब समूचे वज्जिसंघ की राजधानी बनी। उसकी बैठकों का भवन संघागार कहलाता था। वहाँ आठों के ७७०७ नेता बैठकर बहुमत से किसी बात का निर्णय करते थे।

अजातशत्रु ने इन नेताओं में, उनके गणतंत्रों और वज्जिसंघ में साज़िश से फूट डालना शुरू किया। अपनी नीति में वह सफल हो गया और धीरे-धीरे वह फूट का ज़हर आज़ादी के दीवानों में फैल चला। और एक दिन अजातशत्रु ने जो उस पर चोट की तो वह संघ तार-तार होकर बिखर गया। मगध ने वैशाली पर अधिकार कर लिया।

वैशाली आज़ादी का पहरुआ रही थी। उसने जन-जन के हित की रक्षा की थी, जन-जन को बराबरी का दर्जा दिया था। उसकी वेश्या अम्बपाली की उदारता से प्रसन्न होकर महात्मा बुद्ध ने राजाओं का निमंत्रण त्याग उसका आहार ग्रहण किया था। पर अब आज़ादी की वह प्रबल अर्गला साम्राज्यों के प्रहार से टूट गई।

फिर भी बहुत काल पीछे तक वैशाली के लिच्छवियों का गौरव इतिहास में बना रहा और जब गुप्तवंश के राजा चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया तब उनके विरोध को शान्त करने के लिये उसनें उनकी कन्या कुमारदेवी को

ब्याहा। उसने अपने सिक्कों पर कुमारदेवी और लिच्छवियों के नाम खुदवाकर अपना गौरव बढ़ाया और उसके इतिहास-प्रसिद्ध विजयी बेटे ने भी अपने सिक्कों पर अपने को 'लिच्छविदौहित्र' (लिच्छवियों का नवासा) लिखकर अपना मान बढ़ाया। पीछे भी वैशाली का महत्व कुछ काल तक बना रहा क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने बेटे गोविन्द-गुप्त को अपना प्रतिनिधि बनाकर वहाँ सालों रखा था।

वैशाली मिट गई पर उसका गौरव इतिहास बन गया। और इतिहास कभी नहीं मिटता और आज भी जब हम संसार के आज़ादी के लड़ाकों की याद करते हैं तब वैशाली के लिच्छवियों और वज्जियों की याद बरबस ताज़ी हो आती है।

संसार के कम देशों ने अपने लंबे इतिहास में इतनी उथल-पुथल देखी है जितनी भारत की प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र ने। उसने पच्छिम से पूरब जाती लुटेरी सेनाओं की धमक सुनी है, चमकती खूनी तलवारें देखी हैं, शान्ति के उपदेश सुने हैं, और वह आज भी पटने के नाम से बिहार की राजधानी बनी अपनी गौरव-गाथा के पन्ने उलट रही है, इतिहास बनाती जा रही है।

गंगा और सोन के संगम पर पाटलि नाम का एक गाँव था, धीवरों का। अनेक बार वैशाली से राजगृह आते-जाते बुद्ध ने वहाँ गंगा को पार किया था, अनेक बार उपदेश दिये थे। वैशाली के वज्जियों ने जब मगध पर छापे मार-मार कर अजातशत्रु की नींद हराम कर दी थी तब उस राजा ने वहीं एक कोट बनवा दिया था। उसके बेटे उदायी ने वहीं पाटलिपुत्र बसाया और अपनी राजधानी राजगृह के पहाड़ों से वहीं उठा ले गया।

बिंबसार के राजकुल के बाद नन्दों ने मगध का शासन अपने हाथ में लिया। महापद्मनन्द ने इतिहास का पहला

विशाल साम्राज्य स्थापित किया। वह पूरबी सागर से जमुना तक फैला हुआ था, पंजाब के दक्खिन से अवन्ती (मालवा) तक। काशी कोशल और वत्स भी उसी की बढ़ती सीमाओं में समा गये। उस शूद्र राजा के प्रताप ने क्षत्रियों का मान-मर्दित कर दिया। उसकी विशाल सेना के डर से संसार को विजय करने वाले सिकन्दर को लौट जाना पड़ा।

पठानों के देश यूसुफ़ज़ई के शलातुर गाँव से आकर पठान ब्राह्मण पाणिनि ने पाटलिपुत्र में ही अपना व्याकरण लिखा जिसकी कात्यायन ने वहीं व्याख्या की। शूद्र महापद्म नन्द ने क्षत्रिय राजाओं का संहार किया था, अब चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने मिलकर उस पाटलिपुत्र में उसका संहार किया। चन्द्रगुप्त के कुल के नाम पर नये राजकुल का नाम मौर्य-वंश पड़ा।

सेल्यूकस नामक सिकन्दर के ग्रीक सेनापति ने भारत पर हमला किया। चन्द्रगुप्त ने उसे हराकर हिन्दूकुश तक के अनेक प्रान्त जीत लिये और ग्रीक राजकुमारी से विवाह कर उसे पाटलिपुत्र के राजमहल में रखा। अब ग्रीक राजदूत भी वहाँ रहने लगा। मन्त्री चाणक्य की नीति से चन्द्रगुप्त ने जो देश जीते उससे मगध की सीमा समुद्र से समुद्र तक और दक्खिन में मैसूर तक जा पहुँची।

पाटलिपुत्र का वैभव दिन-दिन बढ़ता गया। गंगा और

सोन के कोन में बसे उस नगर की लम्बाई नौ मील और चौड़ाई डेढ़ मील थी। उसके इन्तज़ाम के लिए छः समितियाँ क़ायम थीं। चन्द्रगुप्त का राजमहल पत्थर और लकड़ी का बना था। उसके खम्भों पर वैदूर्य की बेलें कढ़ी थीं जिन पर सोने-चांदी के पक्षी बिठाये गये थे। उसके पोते अशोक ने उसे और भी विशाल बना दिया जिससे जब चीनी यात्री फ़ाह्यान ने उसे सदियों बाद देखा तो उसे लगा कि वह राज-महल दैत्यों का बनाया हुआ है। नगर लकड़ी के परकोटे से घिरा हुआ था जिसमें ६४ द्वार और ५सौ से ऊपर बुर्जियां थीं। बाहर से रक्षा के लिए गहरी खाई दौड़ती थी।

अशोक ने पाटलिपुत्र में नये प्रकार के शासन का आरम्भ किया। प्रेम और दया उसके शासन की बुनियाद बने। उसने प्रजा का अपनी सन्तान की तरह पालन किया। पाटलिपुत्र में उसने बौद्ध संघ की सभा बुलाई और उसके भेजे बौद्ध साधु बुद्ध के कल्याणकर संदेश लेकर देश-देश में उनका प्रचार करते फिरे।

परन्तु कुछ ही काल बाद अशोक के वंशजों की कम-ज़ोरी ने देश पर आफ़त बुलादी। ग्रीक यवन-सरदारों ने भारत पर हमला किया और पूरब-पच्छिम दोनों ओर से उसे रौंदते साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र तक पहुंच गये। उनके सरदार दिमित ने उसे भरपूर लूटा, पर तभी अपने

घर के दुश्मन से भिड़नें जो उसे लौट जाना पड़ा, तो पाटलिपुत्र को कुछ सांस लेनें की गुंजाइश हुई। पर तभी उड़ीसा के खारबेल ने भी दो-दो बार पहुँचकर उस नगर को जला दिया।

इस काल मौर्यकुल का आखिरी राजा बृहद्रथ पाटलिपुत्र में राज कर रहा था। उसके सेनापति और पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने राजा को सेना के सामने ही मारकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। पाटलिपुत्र में उसने दो-दो अश्वमेध यज्ञ किये। उनके यज्ञ के पुरोहित पाणिनि के व्याकरण पर व्याकरण लिखने वाले और योग दर्शन के लेखक महर्षि पातंजलि थे। जैसे पाणिनि और चाणक्य भारत की उत्तर-पच्छिमी सीमा से आकर पाटलिपुत्र में आ बसे थे, जैसे कात्यायन ने वहीं अपना व्याकरण लिखा था, वैसे ही पातञ्जलि भी गौड़ से आकर उस नगर में बस गये थे। उसी नगर में पुष्यमित्र की ही देख-रेख में हिन्दुओं का प्रसिद्ध मनु शास्त्र रचा गया।

शुंगों के बाद पाटलिपुत्र में जिस राजकुल ने राज किया वह भी ब्राह्मण ही था, कण्व राजाओं का। पाटलिपुत्र में ही शुंगकुल के आखिरी व्यसनी राजा देवभूति को उसके मंत्री वसुदेव ने दासी द्वारा मरवाकर नये वंश की नींव डाली। कुछ ही काल बाद दक्खिन के आन्ध्र सात-वाहन कुल के ब्राह्मण राजाओं ने मगध की उस महान् नगरी पर अधि-

कार कर लिया। पर इससे कहीं अधिक दुर्दशा उसकी तब हुई जब इन्हीं उथल-पुथल के दिनों में शकों ने इस देश में प्रवेश किया।

शक-अम्लाट ने पाटलिपुत्र जीतकर वहाँ इतना नर-संहार किया कि पुरुष नाम की कोई चीज़ ही उस नगर में नहीं रह गई। चारों ओर स्त्रियों का ही राज हो गया। वही खेत जोततीं, वही सब कुछ करतीं। बीस-बीस पचीस-पचीस स्त्रियाँ एक पुरुष से ब्याह करतीं। पुरुष आँखों से इतने ओझल हो गए थे कि जब कहीं वे दिखाई पड़ जाते स्त्रियाँ चिल्ला उठतीं—'आश्चर्य ! आश्चर्य !'

यह विदेशी प्रभुता कुछ दिन और चली। पंजाब पर कुशानों का राज हो गया था। वे चीन की ओर से आये थे। उनका प्रबल राजा कनिष्क बौद्ध हो गया था। वह कश्मीर में बौद्ध संघ की बैठक करा रहा था जब उसने सुना कि पाटलिपुत्र में अश्वघोष नाम का महान् बौद्ध पण्डित और कवि है जो आने को तैयार नहीं तब वह सेना लिये पाटलिपुत्र पहुँचा और अश्वघोष को वहाँ से बल पूर्वक हर ले गया।

गुप्तों ने फिर गंगा-जमुना के दोआब से निकल कर मगध पर अधिकार कर लिया और पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। समुद्रगुप्त की दिग्विजय के बाद उसकी

महिमा और बढ़ी और उसके बेटे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने तो उस नगर से निकलकर चन्द्रगुप्त मौर्य की विजय-कहानी दुहरा दी।

पुराण तभी उस नगर में लिखे गये। तभी विष्णुपुराण के लेखक ने गुप्तों के साम्राज्यवाद को धिक्कारा। उसने लिखा कि जिन सम्राटों ने कहा कि 'भारत मेरा है' वे मिट गए। राम के अस्तित्व में भी अब सन्देह होने लगा है तब गुप्तसम्राटों का जस कब तक बना रहेगा? राम के राज्य को धिक्कार! ऐश्वर्य को धिक्कार!

गुप्तों का साम्राज्य हूणों ने तोड़ डाला। तब से पाटलिपुत्र का अभाग्य शुरू हुआ। उस नगर का आगे का इतिहास पतन का है। कभी तो दूर-पास के राज्यों से रत्न-मणि के भंडार उस नगर में भेंट के रूप में आते थे, अब सदैव उनके हमलों का डर बना रहने लगा। धीरे-धीरे उस नगर की लक्ष्मी कन्नौज में जा बसी। जो शक्ति और वैभव कभी पाटलिपुत्र कर रहा था वह अब कन्नौज का हुआ, पहले मौखरियों का फिर हर्ष का।

पाटलिपुत्र के पश्चिम गौड़ का प्रबल राज था और पूरब कन्नौज का। कभी बंगाल के पाल प्रतिहारों के कन्नौज पर हमला करते, कभी कन्नौज के प्रतिहार पालों के साम्राज्य पर और बीच में पाटलिपुत्र रौंदा जाता। गहडवालों ने जब

काशी को दूसरी राजधानी बनाकर गया तक पृथ्वी जीत ली तब पाटलिपुत्र भी कुछ साल उनके अधिकार में रहा।

मुसलमानों के हमले शुरू हुए और ग़ोर के शहाबुद्दीन का सेनापति बख्त्यार नालन्दा को जलाता पाटलिपुत्र को रौंदता गौड़ जा पहुँचा। बलबन के रिसाले उस नगर के पास से निकल गये। पठानों, खिल्जियों, तुगलकों ने बारी-बारी से उसकी बची आबरू लूटी, पर जब सहसराम के शेरशाह ने उस पर अधिकार किया तब कहीं उसे कुछ काल के लिए शान्ति मिली।

यह पहला मौका था जब बाहर के प्रान्तों के एक व्यक्ति ने दिल्ली के तख्त को छीन लिया था। पाटलिपुत्र के पड़ोस से उठ कर उस भोजपुरी पठान ने भोजपुरिया वीरों को अपनी हरावल में लिए राजपूतों की वीरभूमि रौंद डाली और पंजाब से मालवा और गुजरात तक अपने कब्जे में कर लिया। उसने मुगल सम्राट् हुमायूँ को देश से बाहर निकाल दिया। पर शेरशाह के मरते ही हुमायूँ लौटा और कुछ ही साल बाद महान् अकबर दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसे बे-दखल करने जब बंगाल की ओर से हेमू विक्रमाजीत बढ़ा तब उसने पटने में पड़ाव डाले। पाटलिपुत्र अब पटना कह-लाने लगा था।

पटना मुगलों के हाथ में बना रहा। पूरब में उनकी

पकड़ कमजोर पड़ते ही बंगाल के सूबेदारों ने उस पर कब्जा कर लिया। सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह ने वहाँ जन्म लेकर उस नगर को पवित्र किया था। अब फिरंगियों के स्पर्श ने उसे अपने स्पर्श से अपवित्र कर दिया। सिराजुद्दौला और मीर जाफ़र के नष्ट हो जाने पर नवाब मीर कासिम ने पाटलिपुत्र को नवजीवन दान दिया। अंग्रेजों के दाँव-पेच की चोट खाये जब वह पटने पहुँचा तब वह नगर अकाल के गाल में पड़ा था। 'गोलघर' में असीम अन्न भरकर उसने प्रजा की रक्षा की। तभी फिरंगियों का हत्याकांड पटने में हुआ।

कम्पनी की जालसाजी और दुःशासन से चिढ़कर उत्तर भारत की जनता ने बगावत की। आजादी की लहर देश में बह चली। पटने में भी वह लहर सन सत्तावन में उठी। ८० वर्ष के बूढ़े कुँवरसिंह ने बिहार की सरदारी अपने हाथ में ली। उस बाँके लड़ाके के तेवर पटने ने खूब देखे, पर गदर कामयाब न हो सका। अँग्रेजों ने उसे कुचल दिया। करीब तीस बरस बाद कांग्रेस ने नए सिरे से आजादी की लड़ाई शुरू की।

सन् १९२० में महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन ने कांग्रेस को लड़ाई को एक नया रुख दिया और पटना भी अपनी कुर्बानियों की बदौलत अमर हुआ। उसी के चम्पा-

रन इलाके में पहले-पहल महात्मा गांधी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। पटना का कैम्प, जेल, उसके नगर और देहात के बलिदानों का प्रतीक बना। उसके बैरिस्टर और वकील, प्रोफेसर और मुदर्रिस, किसान और मजदूर आजादी की उस लड़ाई में कूद पड़े।

और बाद सन् १९४२ में तो अन्यत्र की ही भाँति पटने में भी एक तूफान फट पड़ा। जेल टूट गये, कचहरियाँ लुट गईं, थाने जल गये, रेलें उखड़ गईं। हिन्दुस्तानी कौम ने करवट ली थी।

सरकार ने पटने में बदले की तैयारी की। सड़कों पर टैंक दौड़ने लगे, आसपास में बमबाज उड़ चले, तोपें गहराने लगीं, फौजें फिरने लगीं। गाँव जला डाले गये, गोलियों ने शहीदों की छाती फाड़ दी, पिताओं के सामने पुत्र टूक-टूक कर डाले गये। नारियों के सुहाग लुट गये। पर जनता आजादी के कौल से न हिली, न हिली। आजादी लेकर ही रही।

यह इतिहास है पाटलिपुत्र का, ढाई हजार साल पुराना, काल की गति पर लिखा, पर सूरज-चाँद-सा चमकता। सदियों की दूरी उसके महान निर्माताओं के चरित–पाणिनि, चाणक्य, अशोक, पतंजलि, विक्रमादित्य, मीर कासिम के नाम धूमिल न कर सकी। उसी पटने को सँवारने वाला, उसका नेता राजेन्द्रप्रसाद, आज भारत का राष्ट्रपति है।

दिल्ली साम्राज्यों की समाधि है। उसकी रज में अनेक विभूतियाँ सोई हैं। सही, वह इतनी प्राचीन नहीं है जितने देश-विदेश के अनेक दूसरे नगर, पर किस्मत के जितने उलट-फेर उसने देखे हैं उतने न काशी ने देखे न दमिश्क ने, न प्रयाग ने न बगदाद ने, न उज्जयिनी ने, न समरकन्द ने, न वैशाली ने, न काहिरा ने। प्रतीहर, गहडवाल, चौहान, गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोधी, सूर, मुगल, अँग्रेज सब एक-एक कर उसके सामने से गुजर गये, जिन्हें उसने कही हुई कहानी की तरह भुला दिया।

दिल्ली ने बेटे द्वारा बाप का खून देखा, खानदान के खानदान का नाश देखा। कत्लेआम झेला, पर एक आँसू न डाला। जमाना उस पर अपने कारनामों की चादर पर चादर डालता चला गया और आज उस पर इतिहास के परत के परत पड़े हैं, चाहे जहाँ से खोलिये, दिल दहला देने वाले नजारे आँखों में उभर आते हैं।

उसके एक भाग में इन्दरपत का गाँव है, शायद उसी स्थान पर खड़ा जहाँ कभी पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ

बसा था। पर आज की दिल्ली की बुनियाद तो तोमरों की डाली हुई है। उन्होंने ही कुतुब के पास खड़ी वह अन्यत्र से लाकर लोहे की लाट गाड़ी जिस पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजयों का उल्लेख है।

दिल्ली कन्नौज के अधिकार में थी और जब-जब कन्नौज के मालिक बदले उसके स्वामी भी बदलते गये। प्रतिहारों से उसे गहड़वालों ने, और गहड़वालों से चौहानों ने छीना। मुसलमान इतिहासकारों का 'राय पिथौरा' और भारतीय कथाओं के ललित नायक पृथ्वीराज ने उसे विशेष गौरव दिया। उसके शासन में चन्देलों के कालिंजर-महोबे पर अधिकार करती, कन्नौज से लोहा लेती दिल्ली उत्तर भारत के नगरों की मुकुटमणि बन गई।

गोर के शहाबुद्दीन को पानीपत के मैदान में दिल्ली के उस लाड़ले ने ऐसी मार मारी कि पठान जो वहाँ से भागे तो उनके पैर सिन्ध के पार ही जाकर रुक सके। पर शहाबुद्दीन फिर लौटा। इस बीच दिल्ली और कन्नौज में गहरी अनबन हो गई थी। कन्नौज दिल्ली की मदद को न आया, दिल्ली सर हो गई। उसके राजा राय पिथौरा को सरस्वती के तीर पकड़कर तलवार के घाट उतार दिया।

गोरी के सेनापति गुलाम कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में गुलामकुल की नींव डाली। एक के बाद एक गुलाम बादशाह उस

नगरी की गद्दी पर बैठे और ज़माने ने रंक से राजा बनते बार-बार देखा। तभी उस महान् नगरी के रोंगटे एकाएक खड़े हो गए क्योंकि चंगेज़ख़ाँ के 'ख़ुदाई कोड़ों' ने उधर रुख किया था। चंगेज़ जिधर निकल जाता उधर सुलगते गाँवों के ढेर लग जाते, गरम लहू का दरिया बह जाता। ज़माना उससे थर्रा उठा था। वही चंगेज़ भेड़ियों-सरीखे अपने मंगोलों को लिए ख़्वारिज़्म के शाह जलालुद्दीन पर टूट पड़ा था। भागता जलालुद्दीन काबुल से जा टकराया, फिर पहले यिल्दिस, पीछे जलालुद्दीन, उसके पीछे चंगेज़ एक के बाद एक सिन्ध के किनारे आ धमके। दिल्ली दम साधे चुपचाप खड़ी थी। चंगेज़ जलालुद्दीन को सिन्ध में ढकेल लौट गया, दिल्ली की जान में जान आई। यिल्दिस और कुबाचा इतिहास से मिट गये। दिल्ली बाल-बाल बच गई।

अल्तमश के बाद पहली बार दिल्ली के तख़्त पर औरत बैठी, उस सुल्तान की बेटी रज़िया। पर वह ज़माना औरत का न था और रज़िया को उस गुस्ताख़ी का बदला अपने ख़ून से चुकाना पड़ा। उसका भाई नेक नासिरुद्दीन तब दिल्ली का सुल्तान हुआ जो क़ुरान की नकल कर अपनी रोज़ी कमाता था। उसके बाद अलबास का तुर्क बलबन अल्तमश का गुलाम, भोंड़ा, नाटा, बदसूरत, क्रूरता, दिलेरी, अक्ल में लासानी, अपनी लियाक़त से उस तख़्त का हक़दार हुआ।

खुसरो उसी के दरबार में था, उसके बेटे मुहम्मद का संरक्षित खुसरो हिन्दी-उर्दू खड़ी बोली का पहला कवि था। हिन्दुस्तानी तर्ज पर मुसलमानों में पहला गायक—जिसने भारतीय संगीत को अनेक राग दिये।

बलबन ने दिल्ली की चोरी-डकैती बन्द कर दी। पर उसका सख़्त मिजाज भी उस महानगरी की मंगोलों से रक्षा न कर सका। उसके बंगाल जाने पर मंगोल आये, नगर को लूट लिया, मुहम्मद को मार डाला। बलबन हज़ार धार रोया। सिर के बाल खींच-खींच, सिर पर धूल डाल-डाल। और उसके बाद तो शाही खानदान के बच्चे-बूढ़े हक़दारों के ख़ून से दिल्ली का तख़्त लाल हो गया। और तभी अमीरों ने जलालुद्दीन खिलजी को वह तख़्त सौंप दिया।

पर दिल्ली का तख़्त जलालुद्दीन के से नेकदिल बादशाहों के लिए न था। नेकी उस जमाने का सबसे बड़ा दुर्गुण था। तब केवल कुत्ते की नींद सोने वाला, कौए की तरह सतर्क और बाज की तरह मौका पाते ही शिकार पर टूट पड़नेवाला ही सफल हो सकता था। जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद अलाउद्दीन ऐसा ही बाज था। चचा ने उसे सूबा दिया, प्यार दिया, भतीजे ने प्यार से गले लगाते चचा की छाती में कटार भोंक दिल्ली की गद्दी हथिया ली। अमीरों के मुंह उसने देवगिरि की लूट के सोने से भर दिये। पिछले

सुल्तान के सारे रिश्तेदारों को तलवार के घाट उतार दिया।

अलाउद्दीन सख्त था, उसकी हुकूमत बेरहम थी, विशेषकर हिन्दू रियाया के लिये, उसने देश में गजब की सख्ती कर दी। सारा नगर डर और सदमे से बेहाल रहता था। शराब और दावतें उसने बन्द कर दीं, अमीरों में शादी-ब्याह बन्द कर दिये। लोग डर के मारे फुसफुसाकर बात करते, भेदियों के कान दीवारों से लगे रहते, मुहाबिरा ही चल निकला—'दीवारों के भी कान होते हैं।'

दिल्ली सल्तनत की सीमायें दूर-दूर तक फैल गईं। दूर-दूर से आये धन से उसके खजाने भर गये। अलाउद्दीन का सेनापति हाल का मुसलमान मलिक क़ाफूर देश को रौंदता दखिन रामेश्वरम् तक चला गया। दिल्ली के सुल्तान ने अगर कहीं नीचा देखा तो चित्तौड़ में रानी पद्मिनी के आगे, पर अगले ही साल अलाउद्दीन ने दिल्ली के उस अपमान का बदला चित्तौड़ को धूल में मिलाकर लिया। दिल्ली अब बेजोड़ थी, नगरों की वह रानी।

अलाउद्दीन के बाद फिर नगर में रक्त उछाला जाने लगा। अमीरों ने गयासुद्दीन तुगलक को गद्दी दे दी। अलाउद्दीन के महल वीरान कर दिये गये, तुगलकाबाद नई दिल्ली बना। बेटा मुहम्मद बाप के स्वागत के लिये बढ़ा जब बाप बंगाल की बग़ावत दबाकर लौटा। स्वागत का पंडाल

एकाएक बैठ गया और बाप, केवल बाप इस दुनियाँ से चल बसा। उस मौत का भेद किसी ने न जाना पर उसीके परिणाम से बेटा गद्दी पर बैठा जो इतिहास में लायक और पागल दोनों कहा गया है।

तर्क, दर्शन, गणित का असाधारण जानकार, फारसी-अरबी का गज़ब का आलिम, लिखने में एक ही चतुर मुहम्मद तुगलक अन्त में दिल्ली का शत्रु साबित हुआ। उसने दक्खिन दौलताबाद का नाम देवगिरि को देकर दिल्ली की प्रजा को वहाँ भेजा। लाखों मर गये, दिल्ली वीरान हो गई। दौलताबाद भी बस न सका और सुल्तान ने रियाया को उल्टे पांव दिल्ली लौटने का हुक्म दिया। जो लौट सके उन्हें दिल्ली में खाना न मिला। दिल्ली बरबाद हो चुकी थी।

उन्हीं दिनों उस नगर में अरब यात्री इब्नबतूता आया, जिसने लाशों-भरी दिल्ली देखी और आँखों-देखा हाल लिखा। फिरोजशाह तुगलक ने दिल्ली को फिरोजाबाद के नाम से नये सिरे से बसाया। वहाँ उसके वजीर खानानेखान मक़बूल खां का संसार-प्रसिद्ध हरम था जहां उसकी दो हजार बीबियाँ थीं; बेगमें जैतूनी रंग की ग्रीक से लेकर पीली चीनी तक।

उसके बाद दिल्ली का वही हाल हुआ जो गुलाम और खिलजी सुल्तानों के बाद हुआ था। चारों ओर खौफ छा

सुल्तान के सारे रिश्तेदारों को तलवार के घाट उतार दिया।

अलाउद्दीन सख्त था, उसकी हुकूमत बेरहम थी, विशेष-कर हिन्दू रियाया के लिये, उसने देश में गज़ब की सख्ती कर दी। सारा नगर डर और सदमे से बेहाल रहता था। शराब और दावतें उसने बन्द कर दीं, अमीरों में शादी-ब्याह बन्द कर दिये। लोग डर के मारे फुसफुसाकर बात करते, भेदियों के कान दीवारों से लगे रहते, मुहाविरा ही चल निकला—'दीवारों के भी कान होते हैं।'

दिल्ली सल्तनत की सीमायें दूर-दूर तक फैल गईं। दूर-दूर से आये धन से उसके खजाने भर गये। अलाउद्दीन का सेनापति हाल का मुसलमान मलिक क़ाफूर देश को रौंदता दखिन रामेश्वरम् तक चला गया। दिल्ली के सुल्तान ने अगर कहीं नीचा देखा तो चित्तौड़ में रानी पद्मिनी के आगे, पर अगले ही साल अलाउद्दीन ने दिल्ली के उस अप-मान का बदला चित्तौड़ को धूल में मिलाकर लिया। दिल्ली अब बेजोड़ थी, नगरों की वह रानी।

अलाउद्दीन के बाद फिर नगर में रक्त उछाला जाने लगा। अमीरों ने गयासुद्दीन तुगलक को गद्दी दे दी। अला-उद्दीन के महल वीरान कर दिये गये, तुगलकाबाद नई दिल्ली बना। बेटा मुहम्मद बाप के स्वागत के लिये बढ़ा जब बाप बंगाल की बग़ावत दबाकर लौटा। स्वागत का पंडाल

एकाएक बैठ गया और बाप, केवल बाप इस दुनियाँ से चल बसा। उस मौत का भेद किसी ने न जाना पर उसीके परिणाम से बेटा गद्दी पर बैठा जो इतिहास में लायक और पागल दोनों कहा गया है।

तर्क, दर्शन, गणित का असाधारण जानकार, फारसी-अरबी का गज़ब का आलिम, लिखने में एक ही चतुर मुहम्मद तुगलक अन्त में दिल्ली का शत्रु साबित हुआ। उसने दक्खिन दौलताबाद का नाम देवगिरि को देकर दिल्ली की प्रजा को वहाँ भेजा। लाखों मर गये, दिल्ली वीरान हो गई। दौलताबाद भी बस न सका और सुल्तान ने रियाया को उल्टे पांव दिल्ली लौटने का हुक्म दिया। जो लौट सके उन्हें दिल्ली में खाना न मिला। दिल्ली बरबाद हो चुकी थी।

उन्हीं दिनों उस नगर में अरब यात्री इब्नबतूता आया, जिसने लाशों-भरी दिल्ली देखी और आँखों-देखा हाल लिखा। फिरोजशाह तुगलक ने दिल्ली को फिरोजाबाद के नाम से नये सिरे से बसाया। वहाँ उसके वजीर खानानेखान मक़बूल खां का संसार-प्रसिद्ध हरम था जहां उसकी दो हजार बीबियाँ थीं; बेगमें जैतूनी रंग की ग्रीक से लेकर पीली चीनी तक।

उसके बाद दिल्ली का वही हाल हुआ जो गुलाम और खिलजी सुल्तानों के बाद हुआ था। चारों ओर खौफ छा

गया। इसी बीच वह घटना घटी जिसकी याद से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तैमूर अपने रिसाले लिये सामने आसमान में धूल के बादल उड़ाता दिल्ली के सामने आ धमका। सात रोज की राह चलकर आया था वह, गांवों को लूटता-जलाता, घंटे-घंटे भर में दस-दस हजार की भीड़ को तलवार के घाट उतारता। दिल्ली के दिल की धड़कन सात रोज तक बन्द रही। शहर के अमीर शहर बख्श देने के लिये मुँहमाँगी दौलत देने को राजी हुए। पर लेनदेन में पीछे जो कुछ दिक्कत हुई तो तैमूर ने अपने भेड़िये छोड़ दिये। जाड़े के दिन थे, दिसम्बर का महीना। खुरासनी और मंगोल दिल्ली के महलों पर टूट पड़े। बालक, बूढ़ा, औरत कोई न बचा। गलियाँ खून उगलने लगीं। दिल्ली बरबाद हो गई।

बचीखुची दिल्ली को फिरोज के बेटे ने बरबाद कर दिया। महलों में तलवारें चमकीं और भाई ने भाई का खून उलीचा। तब दौलतखां लोदी ने राजदण्ड उनके कमजोर हाथों से छीन लिया। सैयदों के बाद पहले बहलोल सुल्तान हुआ फिर सिकन्दर और अन्त में इब्राहीम। इब्राहीम के व्यवहार से उसके दोस्त-दुश्मन सभी भड़क उठे। मेवाड़ के राणा सांगा ने दो-दो बार उसे हराकर दिल्ली का सिर नीचा कर दिया।

फिर इब्राहीम के दुश्मनों ने तैमूर और चंगेज के वंशज काबुल के बादशाह बाबर को बुला भेजा। बाबर समरकंद की अपनी रियासत अनेक बार जीत-हार चुका था और अब हिन्दुस्तान जीतने की ताक में था। दिल्ली पर वह तत्काल चढ़ दौड़ा। इब्राहीम पानीपत के मैदान में उससे मिला पर उसकी एक लाख सेना, बाबर ने इस देश में पहली बार तोप और बारूद का इस्तेमाल कर तितर-बितर कर दी। दिल्ली का राजकुल फिर बदला। अब मुगल उसके राजा हुए, अपनी नई आनबान लिए।

पर बाबर को दिल्ली नहीं भाई। दिल्ली में वह रहा नहीं। हुमायूँ को शेरशाह ने दिल्ली छोड़ने को मजबूर कर ही दिया। स्वयं शेरशाह जब गद्दी पर बैठा तब दिल्ली की विचलित लक्ष्मी कुछ स्थिर हुई। अनेक नये सूबे दिल्ली के अधिकार में आये। उसके बीच से निकल अनेक सड़कें पूरब-पच्छिम दौड़ीं, पहली बार डाक का इन्तजाम हुआ, सुन्दर सिक्के ढले।

शेरशाह के मरते ही हुमायूँ दिल्ली लौटा पर उसके भाग में उस महान् नगरी का भोग बहुत दिनों लिखा नहीं था। और महल की सीढ़ियों से फिसलकर वह एक दिन इस लोक से चलता बना। तब दिल्ली संसार के बादशाहों में नमूना अकबर के अधिकार में आई। इतना बुद्धिमान्, इतना उदार,

इतना इंसाफपसंद और हिन्दू-मुसलमानों को बराबर समझने वाला बादशाह उस तख्त पर कभी न बैठा। पर वह दिल्ली अधिकतर रहता न था। आगरा और फतहपुर सीकरी, जिसे उसने बनाया-बसाया था, उसे अधिक प्रिय थे।

अकबर का बेटा जहाँगीर और पोता शाहजहाँ अधिकतर दिल्ली ही रहे। शाहजहाँ तो बड़ा शालीन बादशाह था। दिल्ली को उसने सुन्दर इमारतों से भर दिया। लालकिले के अनेक भाग, जामामस्जिद आदि उसी ने बनवाये। औरंगजेब ने फिर भी दिल्ली पर विशेष कृपा की। उसने उसे ही अपनी राजधानी बनाया। अपने पिता शाहजहाँ की बसाई नई दिल्ली शाहजहानाबाद में उसने डेरा डाला और लंबे काल तक देश पर सख्ती से हुकूमत करता रहा।

औरंगजेब के बाद मुग़लों का साम्राज्य लड़खड़ा कर गिर पड़ा। छोटे-मोटे बादशाह दिल्ली के तख्त पर बैठते रहे पर उसकी रौनक़ फिर नहीं लौटी। बहादुरशाह, जहाँदारा, फ़र्रुख़सियर एक-एक कर चुपचाप गुज़र गये। मुहम्मदशाह के ज़माने में ईरान का खुँख़ार गड़रिया नादिरशाह राह के गाँव-नगर लूटता दिल्ली में घुसा और नगर में एक बार फिर कुहराम मच गया। तीन दिन लगातार क़त्लेआम जारी रहा। लाखों मार डाले गये। तब धन-राशि और प्रसिद्ध कोहनूर हीरा लेकर नादिरशाह इस देश से लौटा।

वह हीरा कभी ग्वालियर के राजा ने हुमायूँ को भेंट किया था, अब भारत से बाहर चला गया।

उधर मरहठों की आँधी दक्खिन-पच्छिम में उठती आ रही थी और एक दिन प्रांत पर प्रांत जीतते वे दिल्ली तक आ पहुँचे। बादशाह को उन्होंने कैद में डाल दिया और दिल्ली उनके इशारों पर नाचने लगी। तभी एक बार और उस महान् नगरी की क़िस्मत का फैसला हुआ जब पानीपत के मैदान में अफ़ग़ानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली की शक्ति मरहठों की शक्ति से टकराई। जीत अब्दाली के हाथ रही और दिल्ली से मथुरा तक की सड़कें जनता की लाशों से भर गईं। पर अब्दाली दिल्ली में टिका नहीं, लौट गया। न मरहठे ही वहाँ टिके। एक नई शक्ति देश में उठ रही थी।

वह शक्ति फ़िरंगियों की थी। अकबर के ज़माने से ही अंग्रेज़ रोज़गार के लिये भारत आने लगे थे। धीरे-धीरे मुग़लों की कृपा से उनका रोज़गार बढ़ा पर जैसे-जैसे दिल्ली की ताक़त घटती गई वैसे ही वैसे वे प्रांत की रियासतों में बलवान् होते गये और एक दिन प्लासी की लड़ाई जीतकर वे बंगाल के स्वामी बन गये। कुछ ही दिनों बाद दिल्ली के बादशाह शाहआलम से उन्होंने बंगाल और बिहार की दीवानी ले ली और इस देश पर कंपनी का राज क़ायम हुआ।

सन् सत्तावन में देश ने बग़ावत की। दिल्ली का बहादुरशाह उसके नेताओं में से था। दिल्ली में भी विद्रोह की आग भड़की पर पंजाब को अँग्रेज़ों ने दिल्ली से लड़ा दिया। विद्रोह दब गया। राजधानी दिल्ली से हटकर कलकत्ते चली गई। १९११ में राजधानी फिर दिल्ली लौटी जब जार्ज पंचम का लाल किले में अभिषेक हुआ। दिल्ली के राजा-सुल्तान, अच्छे चाहे बुरे, अब तक इसी देश के रहे थे, अब उसके राजा समुन्दर पार के थे, सदा समुन्दर पार के ही बने रहे। दिल्ली के राजा अब विदेशी थे।

कांग्रेस के आज़ादी के आन्दोलनों में दिल्ली ने भी खुलकर भाग लिया। क्रान्तिकारी नवयुवकों ने बार-बार उस नगरी में कुर्बानियाँ कीं और एक दिन मजबूर होकर अँग्रेज़ सरकार को हिन्दुस्तान के साथ-साथ दिल्ली को भारतीयों के हवाले कर देना पड़ा। पर समूचा हिन्दुस्तान नहीं, उसके टुकड़े-टुकड़े करके। भारत और पाकिस्तान अब दो राष्ट्र बने। पच्छिमी पंजाब, सीमा प्रांत, सिन्ध और पूरबी बंगाल मिलकर पाकिस्तान बने।

इस बँटवारे ने आज़ादी की शक्ल बदल दी। फिर भी दोनों की अपनी-अपनी सरकारें बनीं और दिल्ली ने अपनी दुनिया नये सिरे से सम्हाली। पर ठीक तभी एक नया तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अँग्रेज़ों की

साजिश से हिन्दू-मुसलमान जूझ मरे। नोआखाली और पूरबी बंगाल, बिहार और दिल्ली, पंजाब और सिंध में इंसान इंसान के खून का प्यासा बन गया। रक्त की धारें बह चलीं। पंजाब और बंगाल की पिटी-उखड़ी जनता हिन्दुस्तान की ओर चली। हिन्दुस्तान की पिटी-उखड़ी जनता पाकिस्तान की ओर!

दिल्ली की सड़कें-गलियाँ भी लहूलुहान हो गईं। तैमूर और नादिर जो न कर सके थे अँग्रेजों के जुझाये देशी इन्सान ने दिल्ली में वह किया। और तभी जब इन चोटों से दिल्ली बिलख रही थी, उसकी जमीन पर वह घटना घटी जिसके जोड़ की घटना इतिहास में ढूँढ़े न मिलेगी। भारत की आजादी की लड़ाई के सबसे महान् नेता, शान्ति और अहिंसा के पुजारी, हिन्दू-मुसलमानों को भाई-भाई होकर रहने का उपदेश देने वाले, नये भारत के निर्माता और देवता-तुल्य महात्मा गांधी की दिल्ली में हत्या हो गई!

फिर तो दिल्ली के घर-घर से इतनी कराह उठी, उसकी जमीन पर इतने आँसू गिरे कि इतिहास दंग रह गया। दिल्ली ने इतना महान्, इतना मूल्यवान अपनी बीती सदियों में कभी कुछ नहीं खोया था, कोहनूर तक नहीं।

यह दिल्ली की कहानी है, रक्त-भरी, आँसू-भरी। उसकी कहानी साम्राज्य के उठने-गिरने की कहानी है। पर

आज वह नयी साध लिये डग भर चली है, शान्ति और ईमान के उसूल लिये। एशिया के अनेक राष्ट्र उसी की ओर आशा की लौ लगाये देख रहे हैं।